साङ्ख्यकारिका में वर्णित पञ्चविंशति तत्त्व: एक विमर्श

महिमा त्रिपाठी (शोधछात्रा)[1], डॉ. संतोष कुमार पाण्डेय (प्राध्यापक)[2]

संस्कृत विभाग, एम. डी. पी.जी. कालेज, प्रतापगढ़

ईमेल- rjmahima@gmail.com

santoshpandey150@gmail.com

DOI : https://doi.org/10.5281/zenodo.17953737

सारांश

यह शोध पत्र साङ्ख्यकारिका में वर्णित सृष्टि-क्रम की तात्त्विक विवेचना करता है। साङ्ख्य दर्शन के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति प्रकृति और पुरुष के संयोग से होती है। इसमें महत् (बुद्धि), अहंकार, तन्मात्रा, इन्द्रियाँ, मन और पञ्चमहाभूत जैसे तत्वों का क्रमिक विकास होता है। पुरुष निष्क्रिय, निर्गुण, साक्षी स्वरूपवाला तत्त्व है, जबकि प्रकृति सक्रिय और त्रिगुणात्मक है। सृष्टि की प्रत्येक इकाई पुरुष के भोग और अपवर्ग रूपी प्रयोजन की सिद्धि के लिए कार्य करती है। इस शोध पत्र में साङ्ख्य दर्शन के पञ्चविंशति तत्त्वों को आरेख व सारणी के माध्यम से स्पष्ट किया गया है तथा अन्य भारतीय दर्शनों से इसकी तुलना भी की गई है। निष्कर्षतः यह अध्ययन दर्शाता है कि साङ्ख्य का सृष्टिवाद एक दर्शनीय, तर्कसम्मत और उद्देश्यपूर्ण तात्त्विक चिन्तन है, जो आत्मा (पुरूष) को त्रिविध दुःखों से मुक्त कर मोक्ष की ओर उन्मुख करता है।

मुख्य शब्द: साङ्ख्यकारिका, प्रकृति, पुरुष, महत्, अहंकार, तन्मात्रा, मोक्ष।

भारतीय दर्शन परम्परा में साङ्ख्य दर्शन एक अत्यंत प्राचीन और तात्त्विक दृष्टि से समृद्ध दर्शन है। यह दर्शन जगत की उत्पत्ति, तत्वों की रचना एवं आत्मा (पुरूष)-प्रकृति के संबंध पर प्रकाश डालता है। साङ्ख्यकारिका में वर्णित सृष्टि-क्रम का अध्ययन न केवल भारतीय दर्शन की आधारभूत अवधारणाओं को समझने के लिए महत्वपूर्ण है, बल्कि यह आत्मा (पुरूष) के मोक्ष और भौतिक सृष्टि के संबंध को भी स्पष्ट करता है। इस शोधपत्र में यह विश्लेषण किया गया है कि किस प्रकार पुरुष और प्रकृति के संयोग से सृष्टि का विकास होता है? तथा प्रत्येक तत्त्व किस प्रकार उत्पन्न होते हैं? और उनका प्रयोजन क्या है? यह शोधपत्र विशेष रूप से उन शोधार्थियों और छात्रों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा जो साङ्ख्य, वेदांत, या योग दर्शन में गहराई से अध्ययन करना चाहते हैं।

इस शोधपत्र का उद्देश्य साङ्ख्यकारिका में वर्णित सृष्टि-क्रम का तात्त्विक विश्लेषण प्रस्तुत करना है। इसमें पञ्चविंशति तत्त्वों की उत्पत्ति और उनके कारण-कार्य संबंधों का विवेचन करते हुए यह समझने

का प्रयास किया गया है कि प्रकृति और पुरुष के संयोग से किस प्रकार सृष्टि का विस्तार होता है? साथ ही, सृष्टि-क्रम को अन्य दर्शनों जैसे वेदांत, न्याय आदि के सृष्टि-सिद्धांतों से तुलनात्मक रूप से देखने का प्रयत्न किया गया है। इस अध्ययन का एक अन्य महत्वपूर्ण उद्देश्य साङ्ख्य के सिद्धांतों को समकालीन दार्शनिक, वैज्ञानिक तथा पारिस्थितिक संदर्भों में प्रासंगिक रूप से प्रस्तुत करना है, जिससे इन सिद्धांतों की आधुनिक उपयोगिता और औचित्य को स्पष्ट किया जा सके। यह शोधपत्र प्राचीन ग्रंथ 'साङ्ख्यकारिका' के श्लोकों और विभिन्न भाष्यों के सैद्धांतिक विश्लेषण पर आधारित है। इसके साथ ही तुलनात्मक दृष्टिकोण अपनाकर अन्य दर्शनों से इसकी तुलना की गई है।

साङ्ख्य दर्शन भारतीय दार्शनिक परंपरा का एक अत्यंत प्राचीन दर्शन है, जो आत्मा (पुरूष) और प्रकृति के द्वैत पर आधारित सृष्टि-क्रम को सूक्ष्म रूप से स्पष्ट करता है। साङ्ख्यकारिका के अनुसार सृष्टि का आरम्भ पुरुष और प्रकृति के संयोग से होता है। पुरुष साक्षीस्वरूप, चैतन्य, और निर्विकार है, जबकि प्रकृति जड़ होते हुए भी त्रिगुणात्मक (सत्त्व, रजस्स् एवं तमस्) गुणों से युक्त है। प्रकृति के गुणों का वर्णन साङ्ख्यकारिका में इस प्रकार से स्पष्ट किया गया है-

'सत्त्वं लघु प्रकाशकमिष्टमुपष्टम्भकं चलं च रजस्:।
गुरु वरणकमेव तम, प्रदीपवच्चार्थतो वृत्तिः ॥ (कारिका- 13)

अर्थात्- **सत्त्व** गुण हल्का अतएव प्रकाशक, रजस्सगुण प्रवृत्तिशील अतएव उत्तेजक एवं **तमस** गुण भारी अतएव अवरोधक माना गया है। एक ही प्रयोजन की सिद्धि के लिए तीनों प्रदीप के समान मिलकर कार्य करते हैं।

पुरुष के सामीप्य से प्रकृति में चेष्टा उत्पन्न होती है और सृष्टि की प्रक्रिया प्रारंभ होती है। सृष्टि-क्रम का पहला तत्त्व **'महत्'** है, जो व्यष्टि में बुद्धि के रूप में प्रकट होता है। साङ्ख्य दर्शन के अनुसार बुद्धि का मुख्य कार्य है- '**अध्यवसाय**' अर्थात् **निश्चित ज्ञान** या **विवेक (कार्य–अकार्य का निर्णय**)। इसका उल्लेख **साङ्ख्यकारिका** में इस प्रकार से किया गया है-

अध्यवसायो बुद्धिर्धर्मो ज्ञानं विराग ऐश्वर्यम्।
सात्त्विकमेतद् रूपं तामसमस्माद्विपर्यस्तम् ॥ (कारिका- 23)

अर्थात्- बुद्धि का धर्म है- निश्चित ज्ञान, विवेक। धर्म,ज्ञान, वैराग्य एवं ऐश्वर्य इसके सात्त्विक रूप हैं, इसके विपरीत अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य एवं अनैश्वर्य इसके तामस रूप हैं। इस प्रकार बुद्धि अहंकार सहित कार्य करती है, बुद्धि गुणों (सत्त्व, रजस्, तम) के संयोग से रंगयुक्त होती है। इन गुणों (सत्त्व आदि) के अनुपात के अनुसार प्रधान (प्रकृति) भी गुणों के अनुसार ही होती है। यह कारिका स्पष्ट करती है कि बुद्धि का स्वाभाविक कार्य है- स्पष्ट और निश्चित निर्णय लेना (जैसे क्या करना है, क्या नहीं करना है)। बुद्धि गुणों के प्रभाव में आकर कार्य करती है और बुद्धि में अहंकार जुड़ जाता है। इसी तरह, प्रकृति या प्रधान भी

गुणों के अनुपात में कार्य करती है। इसके उपरांत अहंकार की उत्पत्ति होती है, जो 'अहम्' और 'मम्' की भावना के रूप में आत्मसत्ता को व्यक्त करता है। अहंकार तीन प्रकार के माने गए हैं-

1. **सात्त्विक अहंकार** – जिससे मन, ज्ञानेन्द्रियाँ, और कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं।
2. **राजस अहंकार** – जो दोनों को संचार शक्ति देता है।
3. **तामस अहंकार** – जिससे पाँच तन्मात्राएँ उत्पन्न होती हैं।

साङ्ख्यकारिका में 'मन' की सङ्कल्पना को बड़ी सूक्ष्मता से विश्लेषित किया गया है। साङ्ख्य दर्शन के अनुसार, मन (अर्थात् मनस्) बुद्धि, अहंकार आदि एक ही सृष्टि प्रक्रिया के तत्त्व है। मन बुद्धि एवं अहंकार कार्य व्यापार को इस तालिका से समझा जा सकता है-

तत्त्व	**कार्य**	**गुण**	**स्थिति**
मन	संकल्प-विकल्प, इन्द्रियों से विषयों को ग्रहण कर बुद्धि तक पहुँचाना	सत्त्वप्रधान	इन्द्रियों और बुद्धि के मध्य सेतु
बुद्धि	निर्णय, विवेक, निश्चय करना	सत्त्वप्रधान	चित्त के समीप कार्यरत
अहंकार	'मैं' की भावना, कर्ता-भाव	रजोगुणप्रधान	बुद्धि से उत्पन्न तत्त्व

मन जो इन्द्रियों और बुद्धि के मध्य सेतु का कार्य करता है। इसकी विशेष भूमिका संकल्प-विकल्प करना, इन्द्रियों से विषयों को ग्रहण कर उन्हें बुद्धि तक पहुँचाना है। यह केवल सूचनाओं को संग्रह करता है, निर्णय नहीं करता निर्णय करना बुद्धि का कार्य होता है। मन, इन्द्रियाँ और बुद्धि मिलकर ही विषयों के अनुभव को संभव बनाते हैं। परंतु ये तत्त्व स्वयं दृश्य नहीं होते, केवल उनके प्रभाव से हम विषयों का अनुभव करते हैं। मन केवल एक सहायक अंग है, निर्णयात्मक अंग नहीं। वह इन्द्रियों से विषयों को संकलित कर, बुद्धि को प्रस्तुत करता है, जिससे निर्णय संभव होता है। यह समन्वय ही सजीव प्राणी की अनुभूति-प्रक्रिया को संभव बनाता है।

साङ्ख्य दर्शन के अनुसार, मन सात्त्विक अहंकार से उत्पन्न अन्त: इन्द्रिय है। इसका प्रमुख कार्य है- संकल्प अर्थात् सम्यक् कल्पना करना। मन इन्द्रियों से प्राप्त निर्विकल्प संवेदन को सविकल्प रूप देकर, उन्हें विशेषण-विशेष्य भाव से विश्लेषित करता है। इसका उल्लेख **साङ्ख्यकारिका** में इस प्रकार से किया गया है-

उभयात्मकमत्र मनः संकल्पकमिन्द्रियम् च साधर्म्यात् ।
गुणपरिणामविशेषान्नानात्वं बाह्यभेदाश्च॥ (कारिका- 27)

अर्थात्- मन दोनों प्रकार की इन्द्रिय है, यह संकल्प करने वाला है और इन्द्रियों के सजातीय होने से 'इन्द्रिय' कहलाता है। गुणों के विशिष्ट परिणाम के कारण जिस प्रकार विविध पदार्थ उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार विविध इन्द्रियां उत्त्पन्न होती हैं।

मन दोनों प्रकार की इन्द्रियों (ज्ञानेन्द्रिय एवं कर्मेन्द्रिय) से सम्बद्ध होकर उभयात्मक कहलाता है। इसका कार्य संकल्प करना है। यह एक साथ अनेक इन्द्रियों से संयोग कर सकता है। प्रवृत्ति के समय यह साक्षी के रूप में कार्य करता है। मन ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों दोनों से सम्बद्ध होने के कारण उभयात्मक है। यह ज्ञान को ग्रहण करने और कर्म में प्रवृत्त करने दोनों प्रकार की क्रियाओं से संबद्ध है। मन से सम्बद्ध इन्द्रियाँ बुद्धि के निर्देश से कार्य करती हैं। सत्त्वगुणप्रधान होने के कारण वे एक समय में एक ही विषय पर केंद्रित होती हैं। किंतु मन अनेक विषयों को ग्रहण करने की सामर्थ्य रखता है। इसी कारण सभी इन्द्रियों की एकता या सामूहिकता अनुभव में नहीं आती। न्याय-वैशेषिक दर्शन के अनुसार में मन नित्य (शाश्वत) एवं अणु (सूक्ष्म) रूप होता है। यह एक समय में केवल एक ही इन्द्रिय से संयोग कर सकता है। वही साङ्ख्य दर्शन के अनुसार मन नित्य नहीं है, यह अविकल्पनीय (कार्य से उत्पन्न) तत्त्व है। यह अणु नहीं है, बल्कि अनेक इन्द्रियों से एक साथ भी संयोग कर सकता है। इसीलिए मन विविध इन्द्रियों से युगपत् (एक साथ) या क्रमशः (क्रम से) संप्रुक्त हो सकता है।

साङ्ख्य दर्शन के अनुसार, सात्त्विक अहंकार से न केवल मन की उत्पत्ति होती है, अपितु पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ (चक्षु, रसना, घ्राण, त्वक् और श्रोत्र) एवं पञ्च कर्मेन्द्रियाँ (वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ) भी उत्पन्न होती हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ क्रमशः रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द विषयों के ग्रहण की क्षमता रखती हैं, जबकि कर्मेन्द्रियाँ क्रमशः वचन (बोलना), आहरण (ग्रहण), विचरण (चलना), विसर्जन (त्याग) और प्रजनन (संतानोत्पत्ति) जैसे कार्य करती हैं।

साङ्ख्य दर्शन में बुद्धि, अहंकार और मन को अन्तःकरण की संज्ञा दी जाती है। ये तीनों तत्त्व प्रकृति से उत्पन्न होने के कारण स्वभावतः अचेतन होते हैं, परंतु जब पुरुष का चैतन्य उनके साथ संलग्न होता है, तब ये चेतनवत् प्रतीत होते हैं। इसके विपरीत, ज्ञानेन्द्रियाँ तथा कर्मेन्द्रियाँ बाह्यकरण मानी जाती हैं। अतः साङ्ख्य में कुल मिलाकर तेरह करण माने जाते हैं – तीन अन्तःकरण और दस बाह्यकरण। तामस अहंकार से पञ्च तन्मात्राएँ उत्पन्न होती हैं, जो सूक्ष्म तत्त्व हैं – शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध। इन्हीं तन्मात्राओं से क्रमशः पञ्च महाभूतों आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी की उत्पत्ति होती है। प्रत्येक तन्मात्रा अपने विशिष्ट गुण के साथ-साथ एक स्थूल भूत की उत्पत्ति का कारण बनती है। उदाहरणतः, शब्दतन्मात्रा से आकाश और उसका शब्दगुण, शब्द-स्पर्श तन्मात्रा से वायु और उसके शब्द एवं स्पर्शगुण, इसी प्रकार अन्य तन्मात्राओं से क्रमशः अग्नि, जल और पृथ्वी की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार

साङ्ख्य दर्शन के अनुसार 24 तत्त्व प्रकृति से संबंधित हैं और 25वाँ तत्त्व पुरुष है (जो साक्षी है और सृष्टि के व्यापार में संलग्न नहीं होता) इस क्रम को सारणीबद्ध रूप में भी इस प्रकार दर्शाया जा सकता है-

क्रम	तत्त्व	उत्पत्ति का स्रोत	गुणप्रभाव
1	महत्	प्रकृति	सत्त्वप्रधान
2	अहंकार	महत्	त्रिगुणमय
3-7	ज्ञानेन्द्रियाँ	सात्त्विक अहंकार	सत्त्व
8-12	कर्मेन्द्रियाँ	सात्त्विक अहंकार	सत्त्व
13	मन	सात्त्विक अहंकार	सत्त्व
14-18	तन्मात्राएँ	तामस अहंकार	तमस्
19-23	पञ्चमहाभूत	तन्मात्रा	विविध
24	प्रकृति	मूल कारण	त्रिगुणमय
25	पुरुष	स्वतंत्र	निर्गुण

साङ्ख्यकारिका के अनुसार यह समस्त सृष्टि-क्रम प्रकृति एवं उसके तेईस विकारों का कारण-कार्य व्यापार है, इस प्रकार यक 24 तत्त्वों की श्रृंखला है। इन सबके अतिरिक्त पुरुष को पच्चीसवाँ तत्त्व माना गया है, जो सर्वथा स्वतंत्र, निष्क्रिय, चेतन और अविकारी है। वह न तो कार्य है और न ही कारण। इसका उल्लेख **साङ्ख्यकारिका** में इस प्रकार से किया गया है-

मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त।
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः॥' (कारिका- 03)

अर्थात्- मूल प्रकृति किसी का विकार नहीं है, महत् आदि सात तत्त्व कारण-कार्य दोनों हैं, उसके बाद के सोलह तत्वों का समुदाय तो केवल कार्य है, पुरुष न तो कारण है और न ही कार्य है। तात्पर्य यह है कि मूल प्रकृति अविकृति है, महत् (बुद्धि) से लेकर पञ्चतन्मात्राओं तक सात तत्त्व प्रकृति-विकृति (कारण एवं कार्य दोनों) हैं, मन आदि षोडश तत्त्व केवल विकृति (कार्य) हैं, और पुरुष न तो प्रकृति है, न विकृति। इस प्रकार, साङ्ख्य दर्शन में तत्त्वों की यह वैज्ञानिक एवं तात्त्विक क्रमबद्धता सृष्टि के यथार्थ विश्लेषण को प्रस्तुत करता है।

साङ्ख्य दर्शन में सृष्टि का विकास केवल यांत्रिक प्रक्रिया नहीं, अपितु एक प्रयोजनमूलक क्रिया है। इस दर्शन के अनुसार प्रकृति सहित सभी 24 तत्त्व मूलतः अचेतन हैं, परंतु ये चेतन पुरुष के भोग और

मोक्ष रूप प्रयोजन की पूर्ति हेतु प्रवृत्त होते हैं। इस भाव को साङ्ख्यकारिका में स्पष्ट किया गया है-

वत्सविवृद्धिनिमित्तं क्षीरस्य यथा प्रवृत्तिरज्ञस्य।
पुरुषविमोक्षनिमित्तं तथा प्रवृत्तिः प्रधानस्य॥ (कारिका- 57)

अर्थात- अचेतन जैसे गाय का दूध बछड़े की वृद्धि के लिए प्रवृत्त होता है, वैसे ही अचेतन प्रधान (प्रकृति) चेतन पुरुष के मोक्ष हेतु सक्रिय होती है। प्रकृति पुरुष के निमित्त कारण तथा प्रयोजन कारण दोनों रूपों में कार्य करती है, जबकि पुरुष स्वयं निष्क्रिय, साक्षी एवं अकर्ता होते हुए भी समस्त सृष्टि प्रक्रिया का अधिष्ठान है। साङ्ख्यकारिका के अनुसार-

नानाविधैरुपायैरुपकारिण्यनुपकारिणः पुंसः।
गुणवत्यगुणस्य सतस्तस्यार्थमपार्थकञ्चरति॥ (कारिका- 60)

अर्थात- अचेतन प्रकृति, गुणवान (सत्त्व, रजस्, तम) होते हुए भी, गुणरहित पुरुष के प्रयोजन की सिद्धि हेतु अनवरत सक्रिय रहती यहाँ प्रकृति को उपकारिणी और पुरुष को अनुपकारी कहा गया है। साङ्ख्यकारिका के अनुसार-

एते प्रदीपकल्पाः परस्परविलक्षणा गुणविशेषाः।
कृत्स्नं पुरुषस्यार्थं प्रकाश्य बुद्धौ प्रयच्छन्ति॥ (कारिका- 36)

अर्थात् – जिस प्रकार दीपक में तेल, बत्ती और लौ ये तीनों परस्पर भिन्न गुण रखते हुए भी प्रकाश उत्पन्न करते हैं, उसी प्रकार सत्त्व, रजस् और तम ये तीनों गुण एकसूत्र में बंधकर पुरुषार्थ को प्रकाशित करते हैं। साङ्ख्यकारिका के अनुसार-

पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य।
पङ्ग्वन्धवदु भयोरपि संयोगस्तत्कृतः सर्ग॥ (कारिका- 21)

अर्थात्- पुरुष के द्वारा प्रधान का दर्शन, तथा प्रधान के द्वारा पुरुष का कैवल्य सम्पन्न होने के लिए पंगु और अंध के समान दोनों का संयोग होता है जिससे सृष्टि होति है।

प्रकृति का यह प्रयत्न पुरुष के दर्शन (ज्ञान) और कैवल्य (मोक्ष) की प्राप्ति के लिए है । करणों (अन्तःकरण और बाह्यकरण) तथा लिङ्ग शरीर की क्रियाशीलता भी केवल पुरुषार्थ की सिद्धि के लिए होती है, न कि अपने स्वयं के लिए होती है। साङ्ख्यकारिका के अनुसार-

स्वां स्वां प्रतिपद्यन्ते प्रस्पराकूतहेतुकां वृत्तिम्।
पुरुषार्थ एव हेतुर् न केनचित् कार्यते करणम्॥ (कारिका- 31)

अर्थात्- साङ्ख्यकारिका के अनुसार इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि आदि करणों की समस्त गतिविधियाँ केवल पुरुष के प्रयोजन की पूर्ति हेतु ही होती हैं। उनका कोई स्वार्थ या स्वाभाविक प्रयोजन नहीं होता।

वे स्वयं में निष्क्रिय हैं और पुरुष के दृष्टा और भोक्ता रूप को जागृत करने हेतु ही सक्रिय होती हैं। साङ्ख्यकारिका के अनुसार-

पुरुषार्थहेतुकमिदं निमित्तनैमित्तिकप्रसंगेन।
प्रकृतेर्विभुत्वयोगान्नटवद् व्यवस्तिष्ठते लिङ्गम्॥' (कारिका-42)

अर्थात्- पुरुषार्थ के लिए उत्पन्न यह सूक्ष्म शरीर धर्म, अधर्म इत्यादि निमित्त और उसके कार्य स्थूल शरीर से सम्बन्ध होने के कारण प्रकृति की विभुत्वशक्ति के संयोग से नट के समान व्यवहार किया जाता है।

लिङ्ग शरीर, जिसमें बुद्धि, अहंकार, मन, ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ सम्मिलित हैं, वह नट (अभिनेता) के समान संसार रूपी मंच पर विविध योनियों में नाना प्रकार के कार्य करता है। परन्तु यह समस्त अभिनय केवल पुरुष के भोग और मोक्ष की सिद्धि के लिए है- स्वयं शरीर या करणों के लिए नहीं। इन दोनों श्लोकों में यह स्पष्ट किया गया है कि साङ्ख्य दर्शन में करण (13), अर्थात्- 3 अन्तःकरण (बुद्धि, अहंकार, मन) और 10 बाह्यकरण (5 ज्ञानेन्द्रियाँ + 5 कर्मेन्द्रियाँ) तथा लिङ्ग शरीर की समस्त क्रियाएँ स्वतः प्रेरित नहीं होतीं। ये सभी निष्क्रिय होते हुए भी चेतन पुरुष के प्रयोजन (भोग-मोक्ष) की पूर्ति हेतु प्रवृत्त होते हैं। यह एक दृष्टिकोण है जिसमें सृष्टि की समस्त गतिविधियों को एक चेतन सत्ता (पुरुष) की अदृश्य प्रेरणा से अभिप्रेरित माना गया है, जबकि सक्रिय तत्त्व (प्रकृति, करण, लिङ्ग) स्वयं निष्क्रिय होते हुए भी उपकार हेतु कार्य करते हैं।

संपूर्ण प्रकृति-प्रसूत तत्त्वों की क्रिया महत्तत्त्व से आरंभ होकर पञ्चमहाभूतों तक प्रत्येक एक पुरुष की मुक्ति के लिए होती है, साङ्ख्यकारिका के अनुसार-

इत्येष प्रकृतिकृतो महदादिविशेषभूतपर्यन्तः।
प्रतिपुरुषविमोक्षार्थं स्वार्थ इव परार्थ आरम्भः॥ (कारिका-56)

अर्थात्- प्रकृति द्वारा जो सृष्टि-क्रम चलाया गया है, जिसकी शुरुआत महत्तत्त्व (बुद्धि) से होती है और जो पञ्चमहाभूतों तक पहुँचता है, वह वास्तव में प्रत्येक पुरुष की विमुक्ति (कैवल्य) के लिए है। यद्यपि यह प्रक्रिया प्रकृति की स्वाभाविक प्रवृत्ति के रूप में दिखाई देती है, किंतु वस्तुतः यह एक परार्थ-आधारित प्रवृत्ति है।

प्रकृति स्वयं कोई प्रयोजन नहीं रखती, पर वह पुरुष के भोग और मोक्ष के प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए कार्य करती है। इस श्लोक में 'स्वार्थ इव परार्थ आरम्भः' यह अत्यंत सूक्ष्म बोध प्रस्तुत करता है कि प्रकृति की क्रिया देखने में भले ही अपनी प्रेरणा या स्वार्थ से संचालित प्रतीत होती है, लेकिन उसका वास्तविक लक्ष्य केवल पुरुष की मुक्ति है। यह श्लोक साङ्ख्य दर्शन की प्रयोजनमूलक सृष्टि की धारणा का सार है। प्रकृति द्वारा उत्पन्न समस्त तत्त्व, क्रियाएँ और परिवर्तन — ये सभी पुरुष को मोक्ष की दिशा

में अग्रसर करने के लिए हैं। प्रकृति एक उपकारिणी शक्ति है जो बिना किसी स्वार्थ के पुरुष के कल्याण हेतु अनवरत सक्रिय रहती है। इस विचार से यह स्पष्ट होता है कि साङ्ख्य दर्शन में सृष्टि का केंद्र बिंदु 'पुरुष' है, न कि प्रकृति। इस प्रकार प्रकृति, समस्त सृष्टि प्रक्रिया की मुख्य क्रियाशक्ति होते हुए भी, अपने समस्त कार्यों को पुरुष की मुक्ति हेतु ही समर्पित करती है।

साङ्ख्यकारिका में प्रतिपादित सृष्टि-क्रम एक सुनियोजित और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का परिचायक है, जो केवल दार्शनिक या आध्यात्मिक विचार नहीं, अपितु एक विश्लेषणात्मक प्रणाली है। इस प्रणाली की समकालीन वैज्ञानिक विमर्शों जैसे क्वांटम भौतिकी और सिस्टम थ्योरी से तुलनात्मक समीक्षा सृष्टि की सूक्ष्म क्रियाशीलता को समझने में सहायक हो सकती है। साथ ही, योग-दर्शन के व्यावहारिक पक्ष में वर्णित तत्त्व विशेषतः मन, बुद्धि, अहंकार आदि, मनोवैज्ञानिक स्तर पर चित्त की वृत्तियों के विश्लेषण में सहायक हैं, जिससे मानसिक संतुलन और आत्मविकास की प्रक्रिया समझी जा सकती है। इसके अतिरिक्त, प्रकृति को उपकारिणी, संतुलनकारी एवं स्वाभाविक रूप से पर्यावरण के प्रति उत्तरदायी मानने वाला यह दर्शन पारिस्थितिकी एवं पर्यावरणीय चिंतन के लिए एक सुदृढ़ दार्शनिक आधार प्रस्तुत करता है, जो आज के संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. ईश्वरकृष्ण. *साङ्ख्यकारिका,* (सम्पा.) गोविंदकृष्ण झा, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, 1998.
2. आद्याप्रसाद मिश्र. *साङ्ख्यतत्त्वकौमुदी-प्रभा,* अक्षयवट प्रकाशन, प्रयागराज, 2015.
3. वाचस्पति मिश्र. *साङ्ख्यतत्त्वकौमुदी* (संस्कृत टीका सहित). चौखम्भा विद्याभवन, 2002.
4. हरिहरानन्द आर्य, स्वामी. *साङ्ख्य दर्शन* (व्याख्या सहित). गीता प्रेस, 2010.
5. शुक्ल, रामचन्द्र. *भारतीय दर्शन: साङ्ख्य और योग.* लोकभारती प्रकाशन, 2005.
6. त्रिपाठी, राधावल्लभ. *भारतीय ज्ञान परम्परा में साङ्ख्य दर्शन.* राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, 2013.
7. सिन्हा, हरेन्द्र प्रसाद. भारतीय दर्शन का साङ्ख्य पक्ष. प्रभात प्रकाशन, 2004.
8. दासगुप्त, सुरेन्द्रनाथ. *भारतीय दर्शन का इतिहास (खंड 1).* अनुवा. कमलाकांत मिश्र, साहित्य भवन, 1991.
9. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली. *भारतीय दर्शन (खंड 2).* अनुवा. रामचन्द्र तिवारी, हिन्द पॉकेट बुक्स, 2018.
10. वाजपेयी, वेदप्रकाश. *योग और साङ्ख्य: तुलनात्मक अध्ययन.* चौरसिया प्रकाशन, 2015.
11. शर्मा, चन्द्रधर. *भारतीय दर्शन,* मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, 2019.
12. मिश्र, उमेश. *भारतीय दर्शनों का समन्वयात्मक अध्ययन.* राधाकृष्ण प्रकाशन, 2001.